उत्तराध्ययन सूत्र

●श्री श्रीकृष्णमल लोढ़ा

उत्तराध्ययनसूत्र प्राचीन आगम है। इसकी गणना मूलसूत्रों में प्रथमतया की जाती है। इसके ३६ अध्ययनों में धर्मकथानुयोग, द्रव्यानुयोग एवं चरणानुयोग से संबंधित विभिन्न विषयों का रोचक विवेचन हुआ है। न्यायाधिपति श्री श्रीकृष्णमल जी लोढ़ा ने समस्त अध्ययनों को चार भागों —१.उपदेशात्मक २. धर्मकथात्मक ३. आचारात्मक एवं ४. सैद्धान्तिक में विभक्त कर प्रत्येक अध्ययन का प्रेरक परिचय दिया है। —**सम्पादक**

ऐसी मान्यता है कि श्रमणसम्राट् भगवान महावीर ने पावापुरी में निर्वाण प्राप्त करते समय अन्तिम प्रवचन के रूप में उत्तराध्ययन सूत्र का उपदेश किया था। इसके नाम से ही इसकी विशिष्टता ज्ञात होती है— उत्तराध्ययन अर्थात् अध्ययन करने योग्य उत्तमोत्तम प्रकरणों का संग्रह। भवसिद्धिक और परिमित संसारी जीव ही उत्तराध्ययन का भावपूर्वक स्वाध्याय करते हैं।

भाषाशास्त्रियों के मत में सर्वाधिक प्राचीन भाषा के तीन सूत्र हैं— १. आचारांग २. सूत्रकृतांग और ३. उत्तराध्ययन। मूलसूत्रों के संबंध में अनेक मान्यताएँ होने पर भी 'उत्तराध्ययन' को सभी विद्वानों ने एक स्वर से मूलसूत्र माना है। स्थानकवासी सम्प्रदाय में १. उत्तराध्ययन २. दशवैकालिक ३. नन्दीसूत्र और ४. अनुयोगद्वार को मूल सूत्र में गिना जाता है। यहाँ उत्तराध्ययन सूत्र का क्रम पहले होते हुए भी साधकों द्वारा पहले दशवैकालिक और फिर उत्तराध्ययन सूत्र पढ़ा जाता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में ३६ अध्ययन हैं, जिन्हें निम्न चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१. **उपदेशात्मक**— अध्ययन १,३,४,५,६ और १०
२. **धर्मकथात्मक**— अध्ययन ७, ८, ९,१२,१३,१४,१८,१९, २०, २१, २२, २३, २५ और २७
३. **आचरणात्मक**— अध्ययन २,११,१५,१६,१७,२४,२६,३२ और ३५
४. **सैद्धान्तिक**— अध्ययन २८,२९,३०,३१,३३,३४ और ३६

डॉ.सुदर्शनलाल जैन के अनुसार उत्तराध्ययन सूत्र का विषय वर्गीकरण निम्नानुसार किया गया है—

1. **शुद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादक अध्ययन**— २४ (समितीय), २६ (समाचारी), २८(मोक्षमार्ग गति), २९(सम्यक्त्व पराक्रम), ३०(तपोमार्ग), ३१(चरणविधि), ३३(लेश्या), ३६(जीवाजीवविभक्ति) और दूसरे एवं १६वें अध्ययन का गद्य भाग।
2. **नीति एवं उपदेश प्रधान अध्ययन**— १(विनय), २(परीषह),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३(चतुरंगीय) ४(असंस्कृत), ५(अकाममरण), ६(क्षुल्लक–निर्ग्रन्थीय), ७(एलय), ८(कापिलीय), १०(द्रुम पत्रक), ११(बहुश्रुत पूजा), १६(ब्रह्मचर्य समाधिस्थान का पद्य भाग), १७(पापश्रमणीय), ३२(प्रमादस्थानीय) और ३५(अनगार)

3. **आख्यानात्मक अध्ययन–** ९(नमिप्रव्रज्या), १२(हरिकेशीय), १३(चित्तसंभूतीय), १४(इषुकारीय), १८(संजय–संयतीय), १९(मृगापुत्रीय), २०(महानिर्ग्रन्थीय), २१(समुद्रपालीय), २२(रथनेमीय), २३(केशीगौतमीय) और २५(यज्ञीय)

उत्तराध्ययन सूत्र पूर्ण रूप से अध्यात्म शास्त्र है। दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ इसमें बहुत से आख्यानों का संकलन है। इसमें साध्वाचार, उपदेश-नीति, सदाचार, उस समय की प्रचलित सामाजिक, राजनैतिक परम्पराओं का समावेश है। भारतवर्ष में प्रचलित दूसरी परम्पराएँ भी इससे प्रभावित हुई हैं। उदाहरणार्थ– वैदिक परम्परा, महाभारत, गीता, मनुस्मृति आदि और बौद्ध धर्म के धम्मपद, सुत्तनिपात आदि ग्रन्थों पर भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। इसलिए उत्तराध्ययन सूत्र में वर्णित भाव अन्य परम्पराओं के ग्रन्थों से मिलते हैं। ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि कहीं–कहीं तो शब्द भी एक से मिल जाते हैं। उनमें बहुत सी गाथा और पद भी ज्यों के त्यों मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ -

उत्तराध्ययन में	**जैनेतर ग्रन्थों में**
१. अध्ययन १३ / २२	महाभारत शान्ति पर्व १७५ / १८,१९
जहेह सीहो व मियं गहाय मच्चू नरं नेइ हु अंतकाले। न तस्स माया व पिया व भाया कालम्मि तम्मिंसहरा भवंति।।	तं पुत्रपशुसंपन्नं, व्यासक्तमनसं नरं। सुप्तं व्याघ्रो मृगमिव, मृत्युरादाय गच्छति।। संचिन्वानकमेवैनं, कामानामवितृप्तकं। व्याघ्रः पशुमिवादाय, मृत्युरादाय गच्छति।।
२. अध्ययन २० / ३५	धम्मपद १२ / १४
ततोऽहं नाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य।	अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया।
३. अध्ययन २० / ३७	गीता ६ / ५
अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ।।	उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।
४. अध्ययन १ / १४	शान्तिपर्व २८७ / ३५
५. अध्ययन १ / १५	धम्मपद १२ / १३
६. अध्ययन २ / १०	धम्मपद गाथा ३४,२४७,६८६
७. अध्ययन ३ / १७	सूत्र व. ८.१ / ४
८. अध्ययन ९ / ४०	शान्ति पर्व १९८ / ५
९. अध्ययन ९ / ४९	अनुशासन पर्व ९३ / ४० विष्णुपुराण ४ / १० / १०
१० अध्ययन २५ / २९	धम्मपद १९ / ९
११. अध्ययन ३२ / १००	गीता २ / ६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराध्ययन की उच्च आध्यात्मिक दृष्टि का प्रभाव सभी धर्म-परम्पराओं के साथ साथ सामाजिक जीवन पर भी पड़ा है।

उत्तराध्ययन सूत्र के उपदेशात्मक, धर्मकथात्मक, आचारगत और सैद्धान्तिक अध्ययनों का संक्षिप्त में वर्णन इस प्रकार है

(अ) उपदेशात्मक अध्ययन

1. विनय (विणयसुयं–प्रथम अध्ययन)

उत्तराध्ययन के प्रथम अध्ययन में विनय का विवेचन किया गया है। विनय से सभी क्लेश और कष्टों के मूल आठ प्रकार के कर्मों का नाश होता है।

विनयति नाशयति सकलक्लेशकारकमष्टप्रकारं कर्म स विनयः।

प्रस्तुत अध्ययन में विनीत शिष्य के व्यवहार एवं आचरण से विनय के अनेक रूप प्रकट हुए हैं, यथा– गुरु-आज्ञापालन, गुरु की सेवासुश्रूषा, इंगिताकारसंप्रज्ञता, अनुशासनशीलता, मानसिक-वाचिक-कायिक नम्रता, आत्मदमन आदि। विनय को धर्म का मूल तथा दूसरा आभ्यन्तर तप कहा है। इसके अन्तर्गत आत्मा का अनुशासन आवश्यक हैं और शिष्य का गुरु के प्रति भक्तियुक्त व्यवहार और शिष्टता भी अपेक्षित है।

विनय का प्रथम पाठ अहंकार मुक्ति से प्रारंभ होता है। जिसको अहंकार होता है, वह ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता है। गुरुजनों के प्रति छोटे– बड़े सभी के प्रति नम्र, मधुर व्यवहार आवश्यक है।

मनुष्य को अपने जीवन में उन्नति के लिए गुरुजनों के अनुशासन में रहना, नम्रता, भक्ति, सेवा, बैठने–बोलने की शिष्टता, सद्व्यवहार आदि की जानकारी एवं अनुपालना आवश्यक है– उक्त सभी पहलुओं पर इस अध्ययन में विस्तार से वर्णन किया गया है। आत्मानुशासन के लिए विनय आवश्यक है, ये भाव गाथा के रूप में इस प्रकार प्रकट किए गए हैं–

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य।।1.15।।

विनय समस्त मानव जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। इसे श्रमण-वर्ग तक सीमित करना उचित नहीं। यह साधु व गृहस्थ दोनों के लिए एक निर्देशक है।

2. जीवन का मूल्यांकन (चउरंगीय–तृतीय अध्ययन)

इस अध्ययन में दुर्लभ तत्त्व, कर्म की विचित्रता एवं जन्म–मरण के कारण बताकर धर्मपालन करने का उपदेश दिया गया है। मानव जीवन के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है–

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं।।3.1।।

अर्थात् मानव जन्म, शास्त्र का श्रवण करना अर्थात् धर्म को सुनना,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् श्रद्धा और संयम में पुरुषार्थ, ये चार बातें अत्यन्त दुर्लभ हैं।

सद्धा परमदुल्लहा।।3.9।।

धर्म में श्रद्धा प्राप्त होना परम दुर्लभ है।

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।।3.12।।

सरल आत्मा की विशुद्धि होती है और विशुद्ध आत्मा में धर्म ठहरता है व विकसित होता है।

इस अध्ययन में मनुष्य भव प्राप्त करके धर्म श्रवण करने, उस पर श्रद्धा रखने एवं फिर तदनुरूप आचरण करने की प्रेरणा की गई है।

3. जागृति का संदेश (असंखयं–चतुर्थ अध्ययन)

इस अध्ययन में अग्रांकित उपदेश दिए गए हैं– (१)हर समय जाग्रत रहना चाहिए (२)जीवन की क्षण भंगुरता (३) गया समय फिर नहीं आता (४)पाप कर्म भुगतने पड़ते हैं (५) धन परिवार हमें पाप से मुक्त नहीं करा सकते और (६) प्रमाद गुप्तशत्रु है। प्रमादी नहीं बनने का संदेश देते हुए भगवान ने कहा–

असंखयं जीविय मा पमायए।।4.1।।

अर्थात् जीवन क्षणभंगुर है और चंचल भी है, इसलिए क्षण भर भी प्रमाद मत करो।

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते।।4.5।।

मनुष्य का धन उसकी रक्षा नहीं कर सकता। बुढापे, रोग और मृत्यु की अवस्था में धन उसे बचाने में असमर्थ है।

घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंडपक्खी व चरेऽपमत्ते।।4.6।।

समय भयंकर है, शरीर प्रतिक्षण जीर्ण–शीर्ण होता जा रहा है। साधक को अप्रमत्त रहना चाहिए। भारंड पक्षी (पौराणिक सतत सतर्क रहने वाला पक्षी) की तरह विचरण करना चाहिए। जागृति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक ही नहीं, उपयोगी भी है। आध्यात्मिक उन्नति के लिए जागृति महत्त्वपूर्ण है।

छंदं निरोहेण उवेइ मोक्खं।।4.8।।

इच्छाओं के रोकने से ही मोक्ष प्राप्त होता है।

4. मृत्यु की कला : निर्भय और अप्रमत्त जीवन (अकाममरणिज्जं–पंचम अध्ययन)

जीवन जीना एक कला है, परन्तु मरना उससे भी बड़ी कला है। जिस मनुष्य को मृत्यु की कला आती है– उसके लिए जीवन और मृत्यु दोनों ही आनन्द और उल्लासमय बन जाते हैं। इस अध्ययन में मृत्यु बिगाड़ने और सुधारने के कारणों का निर्देश करने के साथ परलोक व जीवन सुधारने का उपदेश दिया गया है।

भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं।।5.22।।

भिक्षु हो चाहे गृहस्थ हो, जो सुव्रती(सदाचारी) है, वह दिव्य गति को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त करता है।

गिहिवासे वि सुव्वए।।5.24।।

गृहस्थ में भी सुव्रती बना जा सकता है।

न संतसंति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया।।5.29।।

ज्ञानी और सदाचारी आत्माएँ मरणकाल में भी त्रस्त अर्थात् भयाक्रांत नहीं होती।

5. ज्ञान और आचार का सम्मिलन (खुड्डागनियंठियं–छठा अध्ययन)

अज्ञान और अनाचार को त्याग कर सम्यग्ज्ञान और शुद्धाचार पालने का उपदेश दिया गया है।

जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा।
लुप्पंति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणंतए।।6.1।।

अज्ञानी और अविद्यावान् स्वयं अपने दुःखों का कारण हैं। अज्ञान कष्ट देता है और दुःख का उत्पादक है। ज्ञानी दुःख का कारण खोजता है और उसका निवारण करता है। मूढ प्राणी बार–बार विनाश को प्राप्त होते रहते हैं।

अप्पणा सच्चमेसेज्जा।।6.2।।

स्वयं ही सत्य की खोज करो। दुःखों से छुटकारा पाने के लिए ज्ञान प्राप्त करो और ज्ञान का जीवन में आचरण करो।

मित्तिं भूएहिं कप्पए।।6.2।।

समस्त प्राणियों पर मित्रता का भाव रखो।

भणंता अकरिंता य बंधमोक्खपइण्णिणो।
वाया वीरियमित्तेणं, समासासेंति अप्पयं।।6.10।।

जो मनुष्य केवल बोलते हैं, करते कुछ नहीं, वे बन्ध मोक्ष की बातें करने वाले दार्शनिक केवल वाणी के बल पर ही अपने आपको आश्वस्त किए रहते हैं।

पुव्वकम्मखयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे।।6.14।।

किए हुए कर्मों को नष्ट करने में ही इस देह की उपयोगिता है।

छठा अध्ययन उपदेश देता है कि अज्ञान, अविद्या, मोह, आसक्ति से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिए और स्वयं को सत्य और ज्ञान की खोज के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

6. जीवन बोध (दुमपत्तयं–दसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में जीवन की क्षणभंगुरता, प्रमाद की भयंकरता आदि का उपदेश दिया गया है। जब तक शरीर स्वस्थ और सबल है, इन्द्रियाँ सक्रिय हैं तब तक प्रमाद छोड़कर धर्म आराधना करनी चाहिए। दसवाँ अध्ययन मनुष्य जीवन की वास्तविकता का उद्घाटन करता है तथा मानव को सदा अप्रमत्त, जाग्रत, कर्मशील और धर्मशील बने रहने की प्रेरणा देता है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहुणाहि रयं पुरे कडं।।10.1।।

पूर्व संचित कर्म रूपी रज को साफ कर।

दुल्लहे खलु माणुसे भवे।।10.4।।

मनुष्य जन्म निश्चय ही बड़ा दुर्लभ है।

परिजुरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवन्ति ते।
से सव्वबले य हायइ, समयं गोयम! मा पमायए।।10.26।।

तेरा शरीर जीर्ण होता जा रहा है, केश पककर सफेद हो रहे हैं। शरीर का सब बल क्षीण होता जा रहा है, अतएव हे गौतम! क्षण भर के लिए भी प्रमाद मत कर। इस अध्ययन में गणधर गौतम स्वामी के जीवन की प्रेरक घटना का भी वर्णन है।

"समयं गोयम! मा पमायए" का संदेश इस अध्ययन में ३६ बार दुहराया गया है। गौतम के माध्यम से संसार के प्राणी मात्र को यह उपदेश दिया गया है कि जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए क्षण भर भी प्रमाद नहीं करना चाहिए, प्रत्येक क्षण प्रयत्नशील रहना चाहिए।

(आ) धर्मकथात्मक अध्ययन

1. आसक्ति ही दुःख का कारण है (एलयं–सातवाँ अध्ययन)

सप्तम अध्ययन में बकरे और मूलधन को गंवा देने वाले व्यापारी के उदाहरणों से अधर्मी और कामभोग में आसक्त जीवों की होने वाली दुर्दशा का दिग्दर्शन करा कर धर्माचरण से होने वाले सुन्दर फल का परिचय दिया गया है। एडक (मेंढा) कांकिणी, तीन वणिक् पुत्र और अपथ्य भोजी राजा के दृष्टान्तों द्वारा यह समझाया गया है कि जो खाने–पीने, भोग–विलास में आसक्ति रखता है, वह संसार में मारा जाता है। दृष्टान्त और उपमाओं द्वारा बताया गया है कि सर्वप्रथम मन की आसक्ति को तोड़ो, भोगों का आकर्षण छोड़ो और परलोक को सुखी बनाना हो तो त्याग एवं अनासक्तिमय जीवन की शैली अपनाओ।

माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे।
मुलच्छेएण जीवाणं, णरगतिरिक्खत्तणं धुवं।।7.16।।

मनुष्य जीवन मूलधन है। देवगति उसमें लाभरूप है। मूलधन के नष्ट होने पर नरक, तिर्यन्च गति रूप हानि होती है।

कम्मसच्चा हु पाणिणो।।7.20।।

प्राणियों के कर्म ही सत्य हैं।

धीरस्स पस्स धीरत्तं, सच्चधम्माणुवत्तिणो।
चिच्चा अधम्मं धम्मिट्ठे, देवेसु उववज्जइ।।7.29।।

क्षमादि सत्य धर्मों को पालन करने वाले मानव की धीरता देखो कि वह अधर्म को त्याग कर धर्मात्मा बनकर देवों में उत्पन्न होता है। अधर्मी नरक में जाता है और धर्मी, त्यागी अनासक्त जीव देवगति में उत्पन्न होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. शांति का मार्ग संतोष (काविलियं–आठवाँ अध्ययन)

कपिल केवली द्वारा लोभ का परित्याग कर संतोष धारण करने का बोध इस अध्ययन में है। यह अध्ययन मानव जीवन में शांति और संतोष का प्रकाश फैलाता है। जिस प्रकार आकाश असीम है उसी तरह तृष्णा भी असीम है। यह अग्नि की भांति सर्वभक्षी है। धन रूपी ईंधन मिलने पर यह अधिक प्रज्वलित होने लगती है। कपिल दो मासा सोना लेने के लिए उतावला था। परन्तु जब उसे राज्य–वैभव भी मिलने लगा तो उसका मन उसके लिए भी लालायित हो गया। अपार धन, स्वर्ण मुद्राओं से भी उसके दो मासा सोने की तृष्णा नहीं बुझी। व्याकुलता से कपिल का चिन्तन मोड़ खाता है और वह राज्य का विचार छोड़कर संयम जीवन अंगीकार कर लेता है।

इइ दुप्पूरए इमे आया।।8.16।।

लोभवृत्ति को वश में करना दुष्कर है। धन से मन कभी नहीं भरता, इसलिए धन का त्याग करने से मन को शांति मिलती है।

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ।
दो मासकयं कज्जं, कोडीए वि ण णिट्ठियं।।8.17।।

जहाँ लाभ है, वहाँ लोभ है। लाभ से लोभ बढ़ता है, दो मासा सोने से बनने वाला काम करोड़ों से पूरा नहीं हुआ। लाभ से लोभ निरन्तर बढ़ता है, दो मासा सोने से संतुष्ट होने वाला करोड़ों से भी संतुष्ट नहीं हुआ।

आठवाँ अध्ययन संदेश देता है कि शांति का मार्ग सम्पत्ति में नहीं संतोष में है।

3. आत्मगवेषी का संदेश (नमिपवज्जा–नवम अध्ययन)

इस अध्ययन में नमिराजर्षि का परम वैराग्यकारी निष्क्रमण और इन्द्र के साथ संवाद है। संसार के धन–वैभव–पुत्र–परिवार को असहाय मानकर मनुष्य को आत्मगवेषी बनने का इस अध्ययन में संदेश है। अपनी आत्मा के अलावा संसार में सब कुछ पराया है। पराया कभी अपना नहीं होता। 'स्व' के दर्शन के लिए 'पर' का त्याग आवश्यक है। जो मानव 'स्व' की खोज करता है, वह स्व को पाता है और स्व को पहचानने पर सभी 'पर' बन्धन लगने हैं। 'पर' बन्धन से मुक्त होने पर व्यक्ति आत्मगवेषी बन जाता है।

सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो नत्थि किंचणं।।9.14।।

मनुष्य में ममता और मेरापन नहीं होने पर चिन्ता, शोक, भय और उद्वेग नहीं होता है। ममता एवं मेरापन शोक के निमित्त हैं। ये दोनों नहीं होने पर कोई चिन्ता नहीं होती है। नमिराजर्षि राज्य वैभव, परिवार और अपने शरीर की ममता त्याग कर एकाकी होकर चलते हैं। उनका संदेश है– 'एगो मे सासओ अप्पा, सेसा मे बाहिरा भावा.....।' शाश्वत आत्मा मेरी है बाकी सब बाहरी है। भय, चिन्ता और शोक अन्य से है, आनन्द स्व से है।

सव्वं अप्पे जिए जियं।।9.36।।

अपने विकारों को जीत लेने पर सबको जीत लिया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छा हु आगाससमा अणंतिया।।9.48।।

इच्छाएं आकाश के समान अनन्त हैं।

कामे पत्थेमाणा अकामा जंति दुग्गइं।।9.53।।

कामभोग की लालसा में लगे रहने से मनुष्य बिना भोग भोगे एक दिन दुर्गति में चला जाता है।

अहे वयइ कोहेणं माणेणं अहमा गई।
माया गइपडिग्घाओ, लोभाओ दुहओ भयं।।9.54।।

जो मनुष्य क्रोध करता है उसकी आत्मा नीचे गिरती है। मान से अधम गति को प्राप्त करता है। माया से सद्गति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इस लोक में, परलोक में लोभ से भय-कष्ट होता है।

4. धर्म का मंगल (हरिएसिज्जं—बारहवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में हरिकेशी मुनि के ऐतिहासिक प्रसंग से जाति, कुल आदि को गौण रख कर आत्मकल्याण में धर्म की प्रधानता निर्दिष्ट है तथा भावयज्ञ का कल्याणकारी विधान बताया गया है। श्वपाक—चाण्डाल कुल में जन्मे हरिकेशी मुनि की ऐसी अद्भुत ऋद्धि और महिमा देखने को मिलती है, जो बहुत दुर्लभ है।

इस अध्ययन में ब्राह्मणों के जातिमद को निरर्थक और अज्ञान का भण्डार बताया गया है। सच्चा ब्राह्मण तप की ज्योति जलाकर ज्ञान यज्ञ करता है। आत्मा की शुद्धि तप और त्याग में होती है। चाण्डाल हो या शूद्र, जो तप का आचरण करता है, वह धर्म का अधिकारी है। धर्म का मंगल द्वार किसी भी जाति के लिए बन्द नहीं है। शुद्ध आत्मा पूज्य है।

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो,
न दीसई जाइविसेस कोइ।।12.37।।

तप-चारित्र की विशेषता तो प्रत्यक्ष दिखलाई देती है, किन्तु जाति की तो कोई विशेषता नजर नहीं आती।

धम्मे हरए बंभे सन्ति तित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं।।12.46।।

धर्म मेरा जलाशय है, ब्रह्मचर्य शांति तीर्थ है, आत्मा की प्रसन्न लेश्या मेरा निर्मल घाट है, जहाँ पर आत्मा स्नान कर कर्म मल से मुक्त हो जाता है।

आज की मानवता के लिए श्रमण सम्राट् भगवान महावीर का यह संदेश समता और शान्तिवादी समाज के लिए आदर्श पथ-प्रदर्शन है।

5. निष्काम साधना का उपदेश (चित्तसंभूइज्जं -तेरहवाँ अध्ययन)

यह अध्ययन मनुष्य को भोगों के दलदल से निकालकर निष्काम साधना का उपदेश देता है। मनुष्य को अपने शुभ या अशुभ कर्मों का फल भोगना पड़ता है। अच्छे कर्म का अच्छा फल होता है तो बुरे कर्म का बुरा फल। धन, शरीर, वैभव, स्त्रियाँ, कामभोग के साधन हैं। मनुष्य को इन सबके प्रति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनासक्त होना चाहिए। आत्म-साधना करने वाले (चित्र) मुनि चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त (संभूत) को कहते हैं।

सव्व सुचिण्णं सफलं नराणं।।13.10।।

मनुष्य के सभी सुचरित (सत्कर्म) सफल होते हैं।

सव्वे कामा दुहावहा।।13.16।।

सभी कामभोग दु:खावह (दु:खद) होते हैं।

कत्तारमेव अणुजाइ कम्मा।।13.23।।

कर्म सदा कर्ता के पीछे-पीछे अर्थात् साथ–साथ चलते हैं।

वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं।।13.26।।

जरा मनुष्य की सुन्दरता को समाप्त कर देती है।

उविच्च भोगा पुरिसं चयन्ति
दुमं जहा खीणफलं व पक्खी।।13.31।।

वृक्ष के फल क्षीण हो जाने पर पक्षी उसे छोड़कर चले जाते हैं वैसे ही पुरुष का पुण्य क्षीण होने पर भोग-साधन उसे छोड़ देते हैं।

यह अध्ययन निदान रहित तपस्या और साधना का उपदेश देता है।

6. त्याग ही मुक्ति का मार्ग है (उसुयारिज्जं–चौदहवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में मनुष्य को बन्धनों,कष्टों, दु:खों, पीड़ाओं से मुक्ति पाने हेतु समाधान किया गया है। इस अध्ययन के पढ़ने से स्पष्ट होता है कि भोग, प्रपंच, रूढियाँ, अन्य विश्वास और मान्यताएँ सभी संसार के कारण हैं। मुक्ति प्राप्त करने के लिए इन सबका त्याग आवश्यक है। त्यागमार्ग को छ: व्यक्तियों ने अपनाया और मुक्त हुए।

पुरोहित पुत्र अपने पिता भृगु पुरोहित से संसार त्याग कर दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा मांगते हैं तो पिता पुत्र के प्रति मोह के कारण बहुत से तर्क देता है और इसके साथ भोगों का निमन्त्रण भी। तब पुत्र कहता है–

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवन्ना न पुणब्भवामो।
अणागयं नेव य अत्थि किंचि, सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं।।14.28।।

संसार में ऐसी कोई भी वस्तुएं नहीं हैं, जो इस आत्मा को पहले प्राप्त नहीं हुई हों। इसलिए हम आज से ही इस साधु धर्म को अन्त:करण से स्वीकार करें जिससे कि फिर जन्म नहीं लेना पड़े। राग को त्याग कर श्रद्धा से साधु धर्म की पालना श्रेष्ठ है। धर्म श्रद्धा हमें राग से (आसक्ति) मुक्त कर सकती है।

7. संयति राजर्षि का इतिहास (संजइज्जं–अठारहवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में गर्दभालि ऋषि से प्रेरित होकर संयति राजर्षि द्वारा शिकार छोड़कर संयम धारण करने का वर्णन है। संयति मुनि से क्षत्रिय राजर्षि ने उनके ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की थाह लेने के लिए अनेक प्रश्न किए। संयति मुनि ने क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद एवं अज्ञानवाद के संदर्भ में जानकारी देने के साथ ज्ञान–क्रियावाद का समन्वय स्थापित किया। संयति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि ने १९ महान् आत्माओं का उल्लेख किया जो सभी शूरवीर थे—कर्म के क्षेत्र में भी और धर्म के क्षेत्र में भी। चक्रवर्ती सम्राट् अथवा विशाल समृद्धि के स्वामी राजाओं ने कर्मक्षेत्र में वीरतापूर्वक साधना करते हुए मुक्ति प्राप्त की।

अणिच्चे जीवलोगम्मि किं हिंसाए पसज्जसि? ।।18.11।।

जीवन अनित्य है, क्षणभंगुर है, फिर क्यों हिंसा में आसक्त होते हो?

किरिअं च रोयए धीरो ।।18.33।।

धीर पुरुष सदा क्रिया (कर्त्तव्य) में ही रुचि रखते हैं।

8. श्रमण जीवन की कठोर चर्या (मिगापुत्तीयं–उन्नीसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में मृगापुत्र का परम वैराग्योत्पादक इतिहास, माता—पुत्र का असरकारक संवाद और साधुता का सुन्दर रूप बताया गया है। इस अध्ययन का प्रारम्भ मुनिदर्शन से होता है और अन्त श्रमण धर्म के पालन और मोक्ष प्राप्ति में।

मृगापुत्र को जातिस्मरण ज्ञान मुनि-दर्शन से होता है। संसार में उसे दुःख ही दुःख नजर आता है और उसके हृदय में वैराग्य भर जाता है। वह माता—पिता से अनुमति मांगता है और कहता है—

जम्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जन्तवो ।।20.16।।

संसार में जन्म का दुःख है, जरा, रोग और मृत्यु का दुःख है। जिधर देखो उधर दुःख ही दुःख है, जिससे वहां प्राणी लगातार निरन्तर कष्ट ही पाते रहते हैं। मृगापुत्र नरकों के कष्ट का वर्णन करता है। श्रमण चर्या बहुत कठोर है। अनेक प्रकार के परीषह हैं। श्रमण को जीवन भर पाँचों व्रतों का पालन करना पड़ता है। शीत—उष्ण परीषह सहन करना पड़ता है और नंगे पैरों, कंकरीले, कांटों भरे रास्ते पर चलना पड़ता है। उसको भोजन आदि के लिए भिक्षाचरी करनी पड़ती है। व्याधि होने पर मृगापुत्र कहते हैं कि मैं मृगचर्या करूंगा। जिस प्रकार मृग बीमार होने पर बिना औषधि के ही नीरोग हो जाता है उसी प्रकार मुझे भी औषधि की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

श्रमण का प्रधान गुण उपशम है— **"उवसमसारं खु सामण्णं"**। मुनि के संबंध में कहा है—

लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए मरणे तहा।
समो निन्दा—पसंसासु, तहा माणावमाणओ ।।19.91।।

जो लाभ—अलाभ, सुख—दुःख, जीवन—मरण, निन्दा—प्रशंसा और मान – अपमान में समभाव रखता है, वही वस्तुतः मुनि है।

9. आत्मा ही आत्मा का नाथ (महानियंठिज्जं— बीसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में नाथ—अनाथ की व्याख्या आध्यात्मिक दृष्टि से की गई है। बहुत से मनुष्यों की यह धारणा है कि धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, सत्ता आदि से व्यक्ति सनाथ होता है। ऐसा भ्रम मगधनरेश राजा श्रेणिक को भी था, परन्तु जब अनाथी मुनि ने नाथ—अनाथ का वास्तविक अर्थ समझाया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब उनका भ्रम टूट गया और अहंकार समाप्त हो गया। व्यक्ति चाहे कितना भी वैभवशाली और शक्तिशाली क्यों न हो वह पीड़ा, वेदना, व्याधि, मरण आदि से अपनी रक्षा नहीं कर सकता है। दूसरे अन्य प्राणी की भी रक्षा नहीं कर सकता है। अतः वह किसी के लिए शरणदायी नहीं हो सकता है। आत्मा स्वयं अपना नाथ है, जब वह सद्प्रवृत्तियों में दत्त–चित्त रहता है। दुष्प्रवृत्तियों में लगी हुई आत्मा अपनी ही शत्रु है, अपने लिए दुःखों का सृजन करती है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिओ सुप्पट्ठिओ।।20.37।।

आत्मा ही सुख-दुःख का कर्त्ता और भोक्ता है। सदाचार में प्रवृत्त आत्मा मित्र के समान है और दुराचार में प्रवृत्त होने पर वही शत्रु है। आत्मा ही अपना नाथ है, अन्य के आधार पर उसे नाथ मानना उचित नहीं। धम्मपद में भी कहा गया है–

अत्ता हि अत्तनो नाथो, कोहि नाथो परो सिया (धम्मपद 12.4)

आत्मा स्वयं ही अपना नाथ है–कौन किसी अन्य का नाथ हो सकता है?

इस अध्ययन के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शुद्धाचारी सम्पूर्ण संयमी श्रमण ही अपनी आत्मा के नाथ होते हैं। यहां त्रैकालिक सत्य भी प्रकट किए गए हैं, जिनका मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

10.समुद्रपाल श्रेष्ठी का चरित्र और मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन (समुद्दपालीयं–इक्कीसवाँ अध्ययन)

समुद्रपाल ने किसी समय भवन की खिड़की में बैठे हुए एक अपराधी को मृत्यु चिह्नों से युक्त वध–स्थान पर ले जाते हुए देखा। उसे देखकर वे कहने लगे–अहो! अशुभ कर्मों का अंतिम फल प्राप्त रूप ही है–यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। वहां बैठे हुए समुद्रपाल बोध पाकर परम संवेग को प्राप्त हुए और माता–पिता को पूछकर प्रव्रज्या लेकर अनगार हो गए। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच महाव्रतों को स्वीकार कर वे बुद्धिमान मुनि जिनोपदेशित धर्म का पालन करने लगे।

उवेहमाणो उ परिवएज्जा, पियमप्पियं सव्वं तितिक्खएज्जा।
न सव्वं सव्वत्थऽभिरोएज्जा, न यावि पूयं गरहं च संजए।।21.15।।

मुनि उपेक्षापूर्वक संयम में विचरे, प्रिय और अप्रिय सबको सहन करे। सब जगह सभी वस्तुओं की अभिलाषा नहीं करे तथा पूजा और निन्दा को भी नहीं चाहे।

अणुन्नए नावणए महेसी, न यावि, पूयं गरहं च संजए।
स उज्जुभावं पडिवज्ज संजए, निव्वाणमग्गं विरए उवेई।।21.20।।

जो महर्षि पूजा पाकर उन्नत और निन्दा पाकर अवनत नहीं होता तथा ऋजु भाव रखकर विरत होता है वह निर्वाण मार्ग को प्राप्त करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

11. नारी नारायणी रूपा (रहनेमिज्जं–बावीसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में भगवान नेमिनाथ और भगवती राजमती के चरित्र का उल्लेख है। इसमें रथनेमि का विचलित होना और राजमती की फटकार से उसका पुनः संयम में स्थिर होना बताया गया है। नारी का उज्ज्वल पक्ष यह है कि वह दया, प्रेम, करुणा और वात्सल्य की मूर्ति है। वह शक्ति स्वरूपा भी है। इसके साथ वह ओज–तेज की स्वामिनी भी है। नारी के नारायणी रूप का दर्शन भी इस अध्ययन में होता है। जब साधक रथनेमि अपनी संयम-साधना में विचलित हुए, तब साध्वी राजमती उनको ओजस्वी शब्दों में उद्‌बोधन देकर कहती है— **"सेयं ते मरणं भवे।"** संयम-साधना से च्युत होने की अपेक्षा मर जाना ही श्रेष्ठ है। साधक रथनेमि पुनः संयम में दृढ़ हो जाते हैं। नारी के कोमल शरीर में संकल्प वज्र के समान कठोर होता है।

राजमती की संकल्पदृढ़ता नारी के लिए आदर्श स्वरूप है। इस अध्ययन के कुछ संदेश यहाँ प्रस्तुत हैं—

कोहं माणं निगिण्हित्ता, मायं लोभं च सव्वसो।
इंदियाइ वसे काउं, अप्पाणं उवसंहरे।।22.48।।

क्रोध, मान, माया और लोभ को जीतकर और पांचों इन्द्रियों को वश में करके आत्मा को प्रमाद से हटाकर धर्म में स्थिर करे।

एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसोत्तमो ।22.5।।त्तिबेमि

पुरुषोत्तम रथनेमी ने आत्मा को वश में करके मोक्ष पाया। इसी तरह तत्त्वज्ञानी, विचक्षण, पंडित जन भोगों से निवृत्त होकर मुक्त हो जाते हैं।

12. समन्वय का शुद्ध मार्ग (केसिगोयमिज्जं–तेवीसवाँ अध्ययन)

भगवान गौतमस्वामी और केशी कुमार श्रमण का सम्मिलन, प्रश्नोत्तर और श्री केशीकुमार श्रमण का वीरशासन में प्रविष्ट होना इस अध्याय का विषय है।

भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर के बीच समय का कोई बहुत बड़ा अन्तराल नहीं था। मात्र २५० वर्षों का ही अन्तर था। इस छोटे से अन्तराल में समय चक्र तेजी से घूमा। भगवान महावीर ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाकर श्रमणों के आचार व्यवहार और बाह्य वेशभूषा में कुछ परिवर्तन किए। उस समय भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के शिष्य भी विद्यमान थे।

श्रावस्ती नगरी में ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ कि पार्श्वनाथ की परम्परा के केशीश्रमण अपने शिष्यों सहित पधारे और भगवान महावीर के पट्ट शिष्य गौतम गणधर भी अपने शिष्यों सहित पधार गए। दोनों का लक्ष्य मोक्ष था। पार्श्वनाथ के श्रमण रंग–बिरंगे वस्त्र पहनते और चातुर्याम का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पालन करते, जबकि भगवान महावीर के श्रमण अल्पातिअल्प मूल्य वाले श्वेत वस्त्र धारण करते और पंच महाव्रतों का पालन करते। छोटे–मोटे अन्य भेद भी थे। केशीश्रमण और गौतम गणधर अपने--अपने शिष्यों सहित परस्पर मिले। गौतम गणधर ने केशीश्रमण की सभी शंकाओं का युक्ति संगत समाधान कर दिया। केशीश्रमण अपने शिष्यों के साथ भगवान महावीर की परम्परा में दीक्षित हो गए। दोनों का समन्वय हो गया---

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविहविगप्पणं।
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगपओयणं।।23.32।।

नाना प्रकार के उपकरणों का विधान लोगों की प्रतीति के लिए, संयम-निर्वाह के लिए है। साधुत्व के ग्रहण के लिए और लोक में पहिचान के लिए लिंग (वेषादि) की आवश्यकता है।

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुयसीलतवोजलं।
सुयधाराभिहया संता, भिन्ना हु न डहंति मे।।23.53।।

कषाय अग्नि है। श्रुत, शील और तप जल है। श्रुत रूप जलधारा से अग्नि को शान्त करने पर फिर वह मुझे नहीं जलाती।

जरामरणवेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं।।23.98

जरा और मृत्यु रूप वेग से डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्म द्वीप ही उत्तम स्थान और शरण रूप है।

समन्वय का शुद्ध मार्ग इस अध्ययन में दिखाया गया है।

13. सच्चा ब्राह्मण कौन (जन्नइज्जं–पच्चीसवाँ अध्ययन)

सच्चे ब्राह्मण का स्वरूप इस अध्ययन में बताया गया है। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न जयघोष नाम का प्रसिद्ध और महायशस्वी विप्र था। वह यम रूप भावयज्ञ करने वाला था। उसी नगरी में वेदों का ज्ञाता विजयघोष नाम का ब्राह्मण यज्ञ करता था। यज्ञ हिंसक होते थे। भगवान महावीर ने हिंसा-विरोधी श्रमण-परम्परा का विरोध किया। भगवान महावीर ने जाति को जन्म से नहीं, परन्तु कर्म से माना।

समयाए समणो होइ,बम्भचेरेण बंभणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो।।25.32।।

समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है।

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा।।25.33।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये सब कर्म से होते हैं।

इस अध्ययन में सच्चे ब्राह्मण के गुणों का दिग्दर्शन कराया गया है, जिससे ब्राह्मण जाति से अलग सच्चे ब्राह्मण को पहचाना जा सकता है।

श्री जयघोष मुनि से उत्तम धर्म को सुनकर उनके सामने गृहत्याग कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयघोष दीक्षित हो गए। दोनों मुनि तप-संयम से अपने पूर्व कर्मों का क्षय करके सर्वोत्तम सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

14. गर्गाचार्य के कुशिष्यों का वर्णन (खलुकिज्जं–सत्ताईसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में गर्गाचार्य के कुशिष्यों का वर्णन और आलसी बैल का उदाहरण है।

गर्गाचार्य गुणवान आचार्य थे, जो सतत समाधि भाव में रहते थे। किन्तु उनके शिष्य दुष्ट बैलों की तरह उद्दण्ड, अविनीत और आलसी थे। उनके शिष्य साता में मस्त रहते थे, घमण्डी और अहंकारी बन गये थे तथा भिक्षाचरी में भी आलस करते थे। अयोग्य बैल के समान दुर्बल शिष्यों को धर्मध्यान में जोतने पर सफलता नहीं मिलती है। इस प्रकार अपने दुष्ट शिष्यों से दुःखी हुए वे सारथी आचार्य सोचने लगे कि मुझे इनसे क्या प्रयोजन है। अतः गर्गाचार्य ने शिष्यों को छोड़कर उग्रतप का आचरण करने का निश्चय किया।

मिउ–मद्दवसंपन्ने, गंभीरो सुसमाहिओ।
विहरइ महिं महप्पा, सीलभूएण अप्पणा।।27.17।।

मृदु एवं सरल स्वभाव वाले, गम्भीर और समाधिवन्त वे महात्मा शील सम्पन्न होकर पृथ्वी पर विचरने लगे।

(इ) आचार सम्बन्धी

1. अनगारों के संयमी जीवन के परीषह(परीसह पविभत्ती–द्वितीय अध्ययन)

इस अध्ययन में मानव को धीरता, वीरता, सहिष्णुता, तितिक्षा और समता का पाठ पढ़ाया गया है। सहिष्णुता व धीरता का उपदेश समग्र मानव जीवन के लिए है, इसे साधु जीवन तक सीमित करना उचित नहीं है। दुःख को समभावपूर्वक सहन करना चाहिए। पीड़ा ढोने के लिए नहीं, सहने के लिए आती है। सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के पूछने पर २२ परीषह बताए हैं– १. क्षुधा परीषह २. प्यास ३. शीत ४. उष्ण ५. डांस मच्छर आदि ६. वस्त्र की कमी या अभाव ७. अरति ८. स्त्री ९. विहार १०. एकान्त में बैठना ११. शय्या १२. कठोर वचन १३. वध १४. याचना १५ अलाभ १६. रोग १७. तृण स्पर्श १८. मैल १९. सत्कार–पुरस्कार २०. प्रज्ञा २१. अज्ञान २२. दर्शन परीषह।

माइन्ने असणपाणस्स... ।।2.3।।

साधक को खाने–पीने की मर्यादा का ज्ञान होना चाहिए।

अदीणमणसो चरे.... ।।2.3।।

संसार में अदीन भाव से रहना चाहिए।

न य वित्तासए परं..... ।।2.20।।

किसी भी जीव को त्रास अर्थात् कष्ट नहीं देना चाहिए।

सरिसो होइ बालाणं.... ।।2.24।।

बुरे के साथ बुरा होना बचकानापन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नत्थि जीवस्स नासो त्ति..... ।।2.27।।

आत्मा का कभी नाश नहीं होता।

इस अध्ययन का सार यह है कि परीषह उत्पन्न होने पर संयम से विचलित नहीं होना चाहिए।

2. ज्ञान अमृत तत्त्व है (बहुसुयपुज्जं—ग्यारहवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में ज्ञान की सर्वश्रेष्ठता बताई गई है। ज्ञान-प्राप्ति में बाधक कारणों से रहित होकर बहुश्रुत होने का उपदेश दिया गया है। अनगार के आचार को प्रकट किया गया है। अबहुश्रुत विद्या रहित अथवा विद्या सहित होने पर अभिमानी, विषयों में गृद्ध, अजितेन्द्रिय, अविनीत और बार -बार बिना विचारे बोलता है। मान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य से युक्त होने पर शिक्षा प्राप्त नहीं होती है। शिक्षा एवं ज्ञान के अवरोधक १. अहंकार २. क्रोध ३. प्रमाद ४. रोग और ५.आलस्य हैं। इनसे सदा बचने की प्रबल प्रेरणा दी गई है। मनुष्य व्यवहार से विनीत और अविनीत कहलाता है। जो विनीत होता है वह प्रियवादी, हितकारी होने के साथ सबसे मैत्री भाव रखता है और वही शिक्षा का अधिकारी है। ज्ञानी अर्थात् बहुश्रुत का जीवन निर्मल होता है और वह अपना जीवन ज्ञान–आराधना में व्यतीत करता है। श्रुत की समुपासना करते–करते जिनवाणी का रहस्यवेत्ता बन जाता है। ज्ञानामृत प्राप्त करने वाला बहुश्रुत कहलाता है। वह श्रेष्ठ और पूजनीय होता है। यहाँ पन्द्रह सुन्दर उपमाएँ बहुश्रुत की महत्ता बताने के लिए दी गई है। उदाहरणार्थ—देवताओं में इन्द्र, मनुष्यों में वासुदेव, वृक्षों में जम्बू वृक्ष, पर्वतों में सुमेरु पर्वत, नक्षत्रों में सूर्य, चन्द्र आदि।

तम्हा सुयमहिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठगवेसए।
जिणऽप्पाणं परं चेव, सिद्धिं संपाउणेज्जासि।।11.32।।

मोक्ष की गवेषणा करने वाला साधक उस श्रुतज्ञान को पढ़ता है जो अपनी और दूसरों की आत्मा को निश्चय मोक्ष में पहुँचाता है।

इस अध्ययन का सार है - ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान में स्वयं और दूसरों, दोनों को सिद्धि प्राप्त होती है।

3. भिक्षु का स्वरूप (सभिक्खु–पन्द्रहवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में साधक-भिक्षु के लक्षण, आचार आदि का वर्णन किया गया है। भिक्षु का अर्थ संयमी साधु है। जिसने विचारपूर्वक मुनिवृत्ति अंगीकार की है, जो सम्यग् दर्शनादि युक्त सरल, निदान रहित, संसारियों के परिचय का त्यागी, विषयों की अभिलाषा-रहित और अज्ञात कुलो की गोचरी करता हुआ विहार करता है, वह भिक्षु कहलाता है। राग रहित, संयम में दृढ़तापूर्वक विचरने वाला, असंयम से निवृत्त, शास्त्रज्ञ, आत्मरक्षक, बुद्धिमान, परीषहजयी, समदर्शी किसी भी वस्तु में मूर्च्छा नहीं रखने वाला भिक्षु होता है। उसका आचरण संसारी प्राणियों से भिन्न होता है। निर्भयता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और निस्पृहता भिक्षु जीवन की आधारशिला है। उसकी आवश्यकताएँ सीमित होती हैं। वह सतत जागरूक और आत्म-भावों में रमण करता है।

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते, जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्के।
अणुक्कसाई लहु अप्पभक्खी, चेच्चा गिहं एगचरे सभिक्खू।।15.16।।

अशिल्पजीवी, गृहत्यागी, मित्र और शत्रु से रहित, जितेन्द्रिय, सर्व संगों से मुक्त, अल्पकषायी, अल्पाहारी, परिग्रह त्यागी होकर एकाकी—रागद्वेष रहित होकर विचरता है, वही भिक्षु है।

प्रस्तुत अध्ययन में सद्भिक्षु के गुणों का वर्णन किया गया है और यह भी प्रेरणा दी गई है कि भिक्षु के रूप को नहीं उसके आन्तरिक स्वरूप को देखना चाहिए।

4. ब्रह्मचर्य (बंभचेरसमाहिट्ठाणं— सोलहवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में ब्रह्मचर्य के नियम और उसकी साधना के फल बताए गए हैं। जिनशासन में स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य समाधि के दस स्थान बताए हैं। उनको सुनकर, हृदय में धारण कर, संयम, संवर और समाधि में बहुत दृढ़ होकर मन, वचन और काया से गुप्त, गुप्तेन्द्रिय और गुप्त ब्रह्मचारी होकर सदैव अप्रमत्त रहकर विचरना चाहिए। निर्ग्रन्थों को स्त्री, पशु और नपुंसक युक्त शय्या, आसनादि का सेवन नहीं करना चाहिए।

वास्तव में आत्मा शुद्ध है, स्वरूप में आत्मा आनन्दघन और अक्षय सुख का भण्डार है, परन्तु भोग-संस्कारों के कारण उसका अपना निजी स्वभाव आवृत्त हो गया है। आवरणों को हटाने के साधन इस अध्ययन में बताए गए हैं। इन साधनों को अपनाने से आत्मा को सुख और समाधि की प्राप्ति होती है।

देव दाणव गंधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा।
बम्भयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करेन्ति तं।।16.16।।

जो दुष्कर व्रत ब्रह्मचर्य की आराधना करता है, उस ब्रह्मचारी को देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नरादि देव नमस्कार करते हैं। ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। इसका पालन कर अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, सिद्ध होते हैं और भविष्य में सिद्ध होंगे।

5. पापी श्रमण की पहिचान (पावसमणिज्जं—सतरहवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में पापी श्रमण कौन होता है, उसका विस्तृत वर्णन किया गया है। पापी श्रमण के लक्षण—

१. दीक्षित होकर बहुत निद्रालु हो जाना और खा पीकर सुख से सो जाना।
२. आचार्य, उपाध्याय से श्रुत और विनय प्राप्त करने के पश्चात् उन्हीं की निन्दा करना।
३. घमण्डी होकर आचार्य, उपाध्याय की सुसेवा नहीं करना और गुणीजनों की पूजा नहीं करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. प्राणी, बीज और हरी का मर्दन कर स्वयं असंयती होकर भी अपने को संयती मानना।
५. तृणादि का बिछौना, पाट, आसन, स्वाध्याय भूमि, पांव पोंछने का वस्त्र आदि को बिना पूंजे बैठना और उपयोग में लेना।
६. शीघ्रतापूर्वक अयतना से चलना और प्रमादी होकर बालक आदि पर क्रोधित होना।
७. प्रतिलेखन में प्रमाद करना, पात्र और कम्बल आदि इधर–उधर बिखेरना, प्रतिलेखना में उपयोग नहीं रखना।
८. प्रतिलेखना मे प्रमाद करना, विकथा आदि सुनने में मन लगाना, हमेशा शिक्षादाता के सामने बोलना।
९. अतिकपटी, वाचाल, अभिमानी, क्षुब्ध, इन्द्रियों को खुली छोड़ना तथा असंविभागी और अप्रीतिकारी होना।
१०. शान्त हुए विवाद को पुनः जगाना, सदाचार रहित हो आत्मप्रज्ञा को नष्ट करना, लड़ाई और क्लेश करना।
११. अस्थिर आसन वाला होना, कुचेष्टा वाला होना, जहां कहीं भी बैठने वाला होना।
१२. सचित्त रज से भरे हुए पैरों को बिना पूंजे सो जाना, शय्या की प्रतिलेखना नहीं करना और संथारे को अनुपयोगी समझना।
१३. दूध, दही और विगयों का बार–बार आहार करना, तपकार्य में प्रीति नहीं होना।
१४. सूर्य के अस्त होने तक बार–बार खाते रहना, 'ऐसा नहीं करना' कहने पर गुरु के सामने बोलना।
१५. आचार्य को छोड़कर परपाषण्ड में जाना, छह-छह मास से गच्छ बदलना।
१६. अपना घर छोड़कर साधु हुआ फिर भी अन्य गृहस्थ के यहां रस लोलुप होकर फिरना और निमित्त बताकर द्रव्योपार्जन करना।
१७. अपनी जाति के घरों से ही आहार को लेना, किन्तु सामुदानिकी भिक्षा नहीं लेना और गृहस्थ की निषद्या पर बैठना।

पाँच प्रकार के कुशीलों से युक्त होकर संवर रहित वेषधारी यह साधु अन्य श्रेष्ठ मुनियों की अपेक्षा निकृष्ट है और वह इस लोक में विष की तरह निन्दनीय है। उसका न इहलोक सुधरता है और न परलोक ही।

उपर्युक्त दोषों को त्यागकर मुनि सुव्रती हो जाता है।

6. समिति और गुप्ति (समिइओ–चौबीसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में समिति और गुप्ति रूप आठ प्रवचन माताओं वर्णन है। समितियाँ पाँच और गुप्तियाँ तीन हैं। ईर्या, भाषा, एषणा, आदान–निक्षेपण और उच्चार परिष्ठापनिका समितियां हैं तथा मन, वचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और काय गुप्तियाँ हैं। साधु को आलम्बन, काल, मार्ग और यतना रूपी कारणों की शुद्धि के साथ गमन करना चाहिए, यह ईर्या समिति है। ईर्या समिति में ज्ञान, दर्शन, चारित्र आलम्बन हैं। काल दिन का समय है और कुमार्ग का त्याग करना मार्ग है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की सम्यक् पालना–ये चार यतनाएँ है। चलते समय इन्द्रियों के विषयों और वाचना आदि पांच प्रकार के स्वाध्याय को वर्जन करता हुआ चले। ईर्या समिति में तन्मय होकर और उसी में उपयोग रख कर चले। क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, निन्दा और विकथा के प्रति सतत उपयोग युक्त होकर रहे। परिमित और निर्वद्य भाषा बोलना भाषा समिति है। आहार, उपधि और शय्या की गवेषणा, ग्रहणैषणा तथा परिभोगैषणा शुद्धता पूर्वक करना, यह एषणा समिति है। उपकरणों को ग्रहण करते ओर रखते हुए मुनि द्वारा विधि का पालन करना, यह आदान निक्षेपण समिति है। मल–मूत्र, कफ, नाक व शरीर का मैल,पसीना, आहार, उपकरण आदि का विवेकपूर्वक स्थण्डिल भूमि में परित्याग करना परिष्ठापना समिति है। इस अध्ययन में पांचों समितियों का वर्णन संक्षेप में किया गया है।

गुप्तियाँ तीन हैं– १. मनोगुप्ति २. वचनगुप्ति ३. कायगुप्ति। मन गुप्ति के १. सत्य २. असत्य ३. मिश्र और ४.असत्यामृषा, ये चार प्रकार हैं। संयमी साधु को संरम्भ, समारंभ और आरम्भ में प्रवृत्त होते हुए मन को नियन्त्रित रखना आवश्यक है। वचनगुप्ति भी मनोगुप्ति के समान चार प्रकार की है। साधु को संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त वाणी को रोकना चाहिए। काया से संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ की प्रवृत्ति को रोकना कायगुप्ति है।

जो पंडित मुनि पांचों समितियों के पालन में प्रवृत्त होकर और अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर सम्यक् आचरण करता है, वह समस्त संसार से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

7. मुनि की समाचारी (समाचारी–छब्बीसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में सभी कर्मों से मुक्त करने वाली समाचारी का वर्णन है। जिसका आचरण करके कई निर्ग्रन्थ संसार सागर से तिर गए। साधुओं की दशांग समाचारी इस प्रकार है– १. आवश्यकी २. नैषेधिकी ३. आपृच्छनी ४. प्रति पृच्छनी ५. छन्दना ६. इच्छाकार ७. मिच्छाकार ८. तथाकार ९. अभ्युत्थान १०. उपसम्पदा। मुनिजीवन की साधारण दैनिक क्रिया का विधान दशांग समाचारी में है। बुद्धिमान मुनि को दिन के चार भाग करके उन चारों भागों में उत्तर गुणों की वृद्धि करनी चाहिए। पहले प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान, तीसरे प्रहर में भिक्षाचरी और चौथे प्रहर में फिर स्वाध्याय करना चाहिए। बुद्धिमान मुनि रात्रि के भी चार भाग करता है– प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान, तीसरे प्रहर में निद्रा और चौथे प्रहर में पुनः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वाध्याय करता है।

8. साधक-आत्मा की अनासक्ति (पमायट्ठाणं–बत्तीसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में प्रमाद की विस्तृत व्याख्या और मोक्ष के उपाय बताए गए हैं। इसका महत्त्वपूर्ण उद्घोष यह है कि शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श आदि का दोष नहीं है, दोष है आत्मा का। आत्मा जब राग–द्वेष आदि परिणामों के द्वारा प्रमादी बनकर किसी पदार्थ के प्रति राग अथवा द्वेष करता है, तभी वह बन्धन में बन्धता है और दुःखों में जकड़ जाता है। अलिप्तता और अनासक्ति इसके मूल स्वर हैं।

वीतराग ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म का क्षय करके कृतकृत्य हो जाते हैं। इस अध्ययन में जीव के साथ लगे हुए समस्त दुःखों से मुक्त होने का मार्ग बताया गया है, जिसे सम्यक् प्रकार से अंगीकार करके जीव अत्यन्त सुखी हो जाते हैं।

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयंति।
कम्मं च जाई-मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई मरणं वयंति।।32.7।।

राग और द्वेष ये दोनों कर्म के बीज हैं, कर्म मोह से उत्पन्न होते हैं, कर्म ही जन्म-मरण के मूल हैं और जन्म-मरण ही दुःख है।

रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण।
न लिप्पए भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणी पलासं।।32.34।।

रूप से विरक्त हुआ मनुष्य शोकरहित हो जाता है। जिस प्रकार जल में रहते हुए भी कमल का पत्ता लिप्त नहीं होता उसी प्रकार संसार में रहते हुए भी वह विरक्त पुरुष दुःख समूह से लिप्त नहीं होता।

समो य जो तेसु य वीयरागो।।32.61।।

जो मनुष्य मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दादि विषयों में सम रहता है, वह वीतराग है।

एविंदियत्था य मणस्स अत्था, दुक्खस्स हेउं मणुयस्स रागिणो।
ते चेव थोवं पि कयाइ दुक्खं न वीयरागस्स करेन्ति किंचि।।32.100।।

इन्द्रियों और मन के विषय, रागी पुरुषों के लिए ही दुःख के कारण होते हैं। ये विषय वीतरागों को कुछ भी दुःख नहीं दे सकते।

9. मोक्षमार्ग प्राप्त करने का उत्तम मार्ग (अणगार मग्गगई– पैंतीसवाँ अध्ययन)

यह अध्ययन साधु-आचार का प्रतिपादन करता है। साधु हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन एवं परिग्रह की इच्छा और लोभ को त्याग दे। कैसे स्थान में नहीं रहना चाहिए और कैसे स्थान में रहना चाहिए, इसका भी इस अध्ययन में वर्णन किया गया है। भोजन के संबंध में मार्गदर्शन दिया गया है। स्वाद के लिए भोजन नहीं करे, किन्तु संयम-निर्वाह के लिए भोजन करे। क्रय–विक्रय की साधु को इच्छा नहीं करना चाहिए। अर्चना, वन्दना, पूजा, ऋद्धि, सत्कार और सम्मान की मन में इच्छा नहीं करे। मृत्यु का समय आने पर उत्तम साधु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यागपूर्वक मनुष्य शरीर को छोड़कर सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

निम्ममो निरहंकारो, वीयरागो अणासवो।
संपत्तो केवलंनाणं सासयं परिणिव्वुए।।35.21।।

ममत्व व अहंकार रहित वीतरागी निरास्रव होकर और केवलज्ञान को पाकर सदा के लिए सुखी हो जाता है।

(ई) सैद्धान्तिक वर्णन

1. मोक्ष मार्ग का स्वरूप और जैन तत्त्व का ज्ञान (मोक्ख मग्गगई–अट्ठाईसवाँ अध्ययन)

मनुष्य का आध्यात्मिक लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। इसके लिए उसे तदनुकूल साधनों की आवश्यकता होती है। उन साधनों का वर्णन इस अध्ययन में है। मोक्ष प्राप्ति के साधन - १. ज्ञान २. दर्शन ३. चारित्र और ४. तप हैं।

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई।।28.35।।

आत्मा के सच्चे स्वरूप को जानना ज्ञान है। दर्शन से तात्पर्य आत्मा के सच्चे स्वरूप पर दृढ विश्वास और श्रद्धा है। चारित्र आत्मगुणों के प्रकटीकरण की क्रिया अथवा कर्मास्रव को रोकने तथा कर्म-निर्जरा की प्रक्रिया है। तप आत्मशुद्धि का साधन है।

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं
सम्मत्तंचरित्ताइं, जुगवं पुव्वं च सम्मत्तं।।28.29।।

सम्यक्त्व के बिना चारित्र नहीं। दर्शन में चारित्र की भजना है अर्थात् सम्यग्दर्शन होने पर चारित्र हो सकता है और नहीं भी। सम्यक्त्व और चारित्र साथ हों तो भी उसमें सम्यक्त्व पहले होता है।

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुन्ति चरणगुणा।
अगुणिस्स णत्थि मोक्खो, णत्थि अमोक्खस्स णिव्वाणं।।28.30।।

सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान प्राप्त नहीं होता, ज्ञान के अभाव में चारित्र के गुण नहीं होते, गुणों के अभाव में मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के अभाव में निर्वाण प्राप्त नहीं होता। सम्यक्त्व का आलोक प्राप्त होने पर भव्यजीव को सर्वप्रथम मोक्ष की अभिलाषा होती है और लक्ष्य मुक्ति प्राप्ति हो जाता है। महर्षि संयम और तप से पूर्व कर्मों को क्षय करके समस्त दुःखों से रहित होकर मोक्ष पाने का प्रयत्न करते हैं।

2. साधक जीवन अथवा मुमुक्षु के सिद्धान्त (सम्मत्तपरक्कमं–उनतीसवाँ अध्ययन)

यह अध्ययन आत्मोत्थानकारी उत्तम प्रश्नोत्तरों से युक्त है। इसे सम्यक्त्व पराक्रम अध्ययन कहा जाता है। प्रश्नोत्तर के रूप में ऐसे सिद्धान्त बताए गए हैं जिनसे साधक जीवन अथवा मुमुक्षु की समस्त जिज्ञासाओं का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान हो जाता है। वह शान्ति और समाधि प्राप्त करता है। मोक्ष की अभिलाषा पूर्ण हो सकती है और जन्म-मरण अर्थात् संसार से सदा के लिए मुक्त हो सकता है। इस अध्ययन का प्रारम्भ संवेग की अभिलाषा से हुआ है और अन्त मोक्ष-प्राप्ति में।

सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ।।29.8।।

सामायिक की साधना करने से पापकारी प्रवृत्तियों का निरोध हो जाता है।

खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ।।29.17।।

क्षमापना से साधक की आत्मा में प्रसन्नता की अनुभूति होती है।

सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ।। 29.18।।

स्वाध्याय करने से ज्ञानावरण कर्म का क्षय होता है।

वेयावच्चेणं तित्थयर नाम गोत्तयं कम्मं निबन्धइ।।29.43।।

वैयावृत्य से आत्मा तीर्थंकर नाम कर्म की उत्कृष्ट पुण्य प्रकृति का उपार्जन करता है।

वयगुत्तयाए णं णिव्विकारत्तं जणयइ।।29.54।।

वचन गुप्ति से निर्विकार स्थिति प्राप्त होती है।

कोहविजएणं खंतिं जणयइ।।29.67।।

क्रोध को जीत लेने से क्षमा भाव जाग्रत होता है।

माणविजएणं मद्दवं जणयइ।।29.68।।

अभिमान को जीत लेने से मृदुता जाग्रत होती है।

मायाविजएणं अज्जवं जणयइ।।29.69।।

माया को जीत लेने से सरल भाव की प्राप्ति होती है।

लोभविजएणं संतोसं जणयइ।।29.70।।

लोभ को जीत लेने से संतोष की प्राप्ति होती है।

यह स्पष्ट है कि सम्यक्त्व पराक्रम अध्ययन में दिए गए प्रश्नोत्तर साधना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

3. तपोमार्ग (तवमग्ग–तीसवाँ अध्ययन)

यह अध्ययन तपश्चर्या के स्वरूप और विधि के संबंध में है। इसमें राग-द्वेष से उत्पन्न पाप कर्मों को क्षय करने में अमोघ साधन 'तप' की सम्यक् पद्धति का निरूपण किया गया है। सांसारिक प्राणियों का शरीर के साथ अत्यन्त घनिष्ठ संबंध हो गया है। उसी के कारण अज्ञानवश नाना पाप कर्मों का बंध होता है। विश्व के सारे प्राणी आधिभौतिक, अधिदैविक और आध्यात्मिक दु:खों से पीड़ित हैं और इन त्रिविध दु:खों से सन्तप्त हैं। समस्त अज्ञ जीव आधि–व्याधि–उपाधि से पीड़ित है। इस पीड़ा को दूर करने के लिए तप को साधन बताया गया है। तप कर्मों की निर्जरा करने, आत्मा और शरीर के तादात्म्य को तोड़कर आत्मा को शरीर से पृथक मानने की दृष्टि उत्पन्न करता है। सम्यक् तप का मार्ग स्वेच्छा से उत्साहपूर्वक शरीर, इन्द्रियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और मन को अनुशासित, संयमित और अप्रमत्त करके स्वरूपावस्थित करने का मार्ग है। तप के दो मुख्य भेद किए गए हैं— बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप ६ प्रकार के हैं— अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, कायाक्लेश और प्रतिसंलीनता। आभ्यन्तर तप के भी ६ भेद हैं— प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग। बाह्य तप का अभिप्राय शरीर के प्रति आत्मा की संलग्नता—देहासक्ति को मिटाना है। साधक को अनशन आदि बाह्य तपों का आचरण उतना ही करना चाहिए, जिससे शरीर निर्बल न हो, इन्द्रियाँ क्षीण न हों और आत्मा में संक्लेश उत्पन्न न हों। आन्तरिक तपों का उद्देश्य आत्मिक विकारों का शोधन और आत्मा का शुद्धिकरण है, जो विवेक पर आधारित है।

जहा महातलागस्स, सन्निरुद्धे जलागमे।
उस्सिंचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे।।30.5।।
एवं तु संजयस्सावि, पावकम्मनिरासवे।
भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जई।।30.6।।

बड़े भारी तालाब में पानी आने के मार्ग को रोककर उसका जल उलीचने के बाद सूर्य के ताप से क्रमशः सुखाया जाता है। उसी प्रकार संयमी पुरुष नवीन पाप कर्मों को रोककर तपस्या के द्वारा पूर्व कर्मों को क्षय कर देता है।

एयं तवं तु दुविहं जे सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पण्डिए।।30.37।।

दोनों तरह के तप का जो मुनि सम्यक् प्रकार से आचरण करता है, वह पंडित शीघ्र ही संसार के सभी बंधनों से छूट जाता है।

4. चारित्र विधि (चरणविहि—इकतीसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में जीवों को सुख देने वाली चारित्र विधि बतलाई गई है। इसका अर्थ है— चारित्र का ज्ञान करके उसे विवेकपूर्वक धारण करना। इसके आचरण से बहुत से जीव संसार सागर से तिर गए।

एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं।
असंजमे नियत्तिं च संजमे य पवत्तणं।।31.2।।

असंयम रूप एक स्थान से निवृत्ति करके संयम रूप एक स्थान में प्रवृत्ति करे। चारित्र के अनेक अंग हैं— पांच महाव्रत, पांच समिति—तीन गुप्ति, दशविध श्रमण धर्म, सम्यक् तप, परीषहजय, कषाय विजय, विषय विरक्ति, त्याग, प्रत्याख्यान आदि। चारित्र के उच्च शिखर पर चढने के लिए भिक्षु प्रतिमा, अवग्रह प्रतिमा, पिण्डावग्रह प्रतिमा आदि अनेक प्रतिमाएँ हैं। जिनसे साधक अपनी आत्मशक्ति को प्रकट करता हुआ आगे से आगे मोक्ष की ओर बढ़ता है। जो भिक्षु राग और द्वेष का सतत निरोध करता है, वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता। इस अध्ययन में असयम, राग-द्वेष, बन्धन, विराधना, अशुभ लेश्या, मदस्थान, क्रिया स्थान, कषाय, पांच अशुभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रियाएँ, अब्रह्मचर्य, असमाधि स्थान, सबल दोष, पापश्रुत प्रसंग, महामोह स्थान, आशातना आदि कई विघ्नों का नाम निर्देश करके उनमें आत्म रक्षा करने की विधि बताई गई है। १७ प्रकार के असंयम से निवृत्त होना और १७ प्रकार के संयम में प्रवृत्त होना चारित्र विधि है।

5. कर्म प्रकृति (कम्मप्पयडी–तैंतीसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में कर्मों के भेद, प्रभेद, गति, स्थिति आदि का वर्णन है। कर्मों के विविध स्वभाव, प्रतिसमय कर्मों के परमाणुओं के बन्ध, संख्या, उनके अवगाहन क्षेत्र का परिमाण, कर्मों की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति और कर्मों के फल देने की शक्ति के कारणभूत अनुभाग इत्यादि का गहराई से विश्लेषण किया गया है। कर्मबन्ध के चार प्रकार प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग रूप का भी वर्णन है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय आठ कर्म हैं। इनकी उत्तर प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–

ज्ञानावरण– मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान।

दर्शनावरण– निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, चक्षु अचक्षु, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण।

वेदनीय– साता व असाता।

मोहनीय–दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। अनेक अवान्तर भेद।

आयुष्य- नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव

नाम– शुभ व अशुभ। अनेक अवान्तर भेद।

गोत्र– उच्च और नीच।

अन्तराय– दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय।

इस अध्ययन में द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव का स्वरूप भी वर्णित है कर्म जब तक विद्यमान रहते हैं तब तक जीव नाना गतियों और योनियों में परिभ्रमण करता रहता है। कर्म के कारण व्यक्ति भयंकर कष्ट पाते हैं और नाना दुःख उठाते हैं। हम जो विश्व में विषमताएँ देखते हैं वे सब कर्मों के कारण हैं।

तम्हा एएसि कम्माणं अणुभागे वियाणिया
एएसि संवरे चेव, खवणे य जए बुहे।।।33.25।।

कर्मों के विपाक को जानकर बुद्धिमान पुरुष इनका निरोध एवं क्षय करने का प्रयत्न करे।

6. लेश्या (लेसज्झयणं–चौंतीसवाँ अध्ययन)

छः लेश्याओं का स्वरूप, फल, गति, स्थिति आदि का वर्णन इस अध्ययन में है। छः लेश्याओं के नाम हैं १. कृष्ण लेश्या २. नील लेश्या ३. कापोत लेश्या ४. तेजो लेश्या ५. पद्म लेश्या ६. शुक्ल लेश्या। ग्यारह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारों के माध्यम से लेश्याओं को व्यवस्थित रूप दिया गया है— १. नाम द्वार २. वर्ण द्वार ३. रस द्वार ४. गन्ध द्वार ५. स्पर्श द्वार ६. परिणाम द्वार ७. लक्षण द्वार ८. स्थान द्वार ९. स्थिति द्वार १०. गति द्वार ११. आयु द्वार।

जैनाचार्यों ने लेश्या की निम्न परिभाषाएँ बताई हैं—

१. कषाय से अनुरंजित आत्म-परिणाम।

२. मन—वचन—काया के योगों का परिणाम या योग प्रवृत्ति।

३. काले आदि रंगों के सान्निध्य से स्फटिक की तरह राग—द्वेष कषाय के संयोग से आत्मा का तदनुरूप परिणमन हो जाना।

४. कर्म के साथ आत्मा को संश्लिष्ट करके कर्म-बंधन की स्थिति बनाने वाली।

किण्हा नीला काऊ तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो दुग्गइं उववज्जइ बहुसो।।34.56।।

कृष्ण, नील और कापोत तीनों अधर्म लेश्याएँ हैं, इनसे जीव दुर्गति में जाता है।

तेऊ पम्हा सुक्का तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो सुग्गइं उववज्जइ बहुसो।।34.57।।

तेजो, पद्म और शुक्ल ये तीन धर्म लेश्याएँ हैं, इनसे जीव सुगति में जाता है।

लेसाहिं सव्वाहिं पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न वि कस्सवि उववाओ परे भवे अत्थि जीवस्स।।34.58।।

सभी लेश्याओं की प्रथम समय की परिणति में किसी भी जीव की परभव में उत्पत्ति नहीं होती।

लेसाहिं सव्वाहिं चरमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न वि कस्सवि उववाओ परे भवे अत्थि जीवस्स।।34.59।।

सभी लेश्याओं की अन्तिम समय की परिणति में किसी भी जीव की परभव में उत्पत्ति नहीं होती।

तम्हा एयाण लेसाणं अणुभागे वियाणिया।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता पसत्थाओ अहिट्ठेज्जासि।।34.61।।

अत: लेश्याओं के अनुभाव रस को जानकर अप्रशस्त लेश्याओं को छोड़कर प्रशस्त लेश्या अंगीकार करनी चाहिए।

7. जीव और अजीव तत्त्व (जीवाजीवविभत्ती—छत्तीसवाँ अध्ययन)

इस अध्ययन में जीव और अजीव का पृथक्करण किया गया है। दूसरे शब्दों में जीव--अजीव को विभक्त करके उनका सम्यक् प्रकार से निरूपण किया गया है। इस अध्ययन के माध्यम से साधक जीव और अजीव का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके संयम में प्रयत्नशील हो सकता है। जीव और अजीव का सम्यक् परिज्ञान होने पर ही वह गति, पुण्य, पाप, संवेग, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष को जान सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवा चेव अजीवा य एस लोए वियाहिए।
अजीवदेसमागासे अलोए से वियाहिए।।36.2।।

यह लोक जीव और अजीवमय कहा गया है और अजीव देश रूप आकाश ही जिसमें है वह अलोक कहा गया है।

दव्वओ खेत्तओ चेव कालओ भावओ तहा।
परूवणा तेसिं भवे जीवाणमजीवाण य।। 36.3।।

जीव और अजीव द्रव्य का प्रतिपादन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार प्रकारों से होता है।

अजीव के दो भेद हैं--१. रूपी २. अरूपी। अरूपी अजीव के दस भेद हैं— धर्मास्तिकाय के १. स्कंध २. देश ३. प्रदेश, अधर्मास्तिकाय के १. स्कन्ध २. देश ३.प्रदेश, आकाशास्तिकाय के १. स्कन्ध २. देश ३. प्रदेश और १०. काल। रूपी अजीव के चार भेद हैं— स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु।

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय को लोक प्रमाण कहा गया है। आकाश लोक और अलोक दोनों में है। धर्म, अधर्म और आकाशास्तिकाय, ये तीनों द्रव्य अनादि अनन्त हैं । काल प्रवाह की अपेक्षा अनादि अनन्त है और आदेश की अपेक्षा सादि सान्त है। सन्तति प्रवाह की अपेक्षा से पुद्गल के स्कन्ध अनादि अनन्त हैं तथा स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त हैं।

द्रव्य विभाग का वर्णन ३६.११ से ३६.४७ तक किया गया है। जिसके अनुसार रूपी अजीव द्रव्यों का परिणमन वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से पांच प्रकार का है। जीव दो प्रकार हैं— १. संसारी २. सिद्ध। ३६.४९ से ३६.६७ तक सिद्ध जीवों के प्रकार और सिद्धत्व प्राप्ति का वर्णन है।

लोएगदेसे ते सव्वे नाणदंसणसन्निया।
संसारपारनित्थिन्ना सिद्धिं वरगइं गया।। 36.67

सभी सिद्ध भगवान संसार के उस पार पहुंच कर ज्ञान, दर्शन के उपयोग से सर्वोत्तम सिद्धगति को प्राप्त कर एक देश में ही रहे हुए हैं।

संसारी जीव त्रस और स्थावर रूप से दो प्रकार के हैं। स्थावर और त्रस के तीन–तीन भेद बताए गए हैं –

स्थावर– पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पति काय

त्रस– तेजस्काय, वायुकाय और द्वीन्द्रियादि (उदार)।

आगमों में कई स्थानों पर तेजस्काय और वायुकाय को पांच स्थावरों में माना है, किन्तु यहां दोनों को त्रस में परिगणित किया गया है। कारण कि चलन क्रिया देखकर व्यवहार से इन्हें त्रस कह दिया गया है। उत्तराध्ययन का वैशिष्ट्य इस विभाजन से पता चलता है। उदार त्रस चार प्रकार के हैं– द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इन उदार त्रस काय जीवों का वर्णन 36.151 से 36.169 तक है। पंचेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं– 1. नैरयिक 2. तिर्यंच 3.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य 4. देव। नारक जीव का वर्णन 36.156 से 36.169 तक, तिर्यंच का निरूपण 36.170 से 36.194 तक, मनुष्य का वर्णन 36.195 से 36.203 तक और देव का वर्णन 36.204 से 36.247 तक किया गया है।

इह जीवमजीवे य सोच्चा सद्दहिऊण य।
सव्वनयाण अणुमए रमेज्जा संजमे मुणी।।36.250।।

इस प्रकार जीव और अजीव के व्याख्यान को सुनकर और उस पर श्रद्धा करके सभी नयों से अनुमत संयम में मुनि रमण करे।

तओ बहुणि वासाणि सामण्णमणुपालिया।
इमेण कमजोगेण अप्पाणं संलिहे मुणी।।36.251।।

अनेक वर्षों तक श्रामण्य का पालन करके मुनि इस क्रम से आत्मा की संलेखना करे। संलेखना जघन्य ६ महीने की, मध्यम एक वर्ष की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की होती है।

पढमे वासचउक्कम्मि विगईनिज्जहणं करे।
बिइए वासचउक्कम्मि विचित्रं तु तवं चरे।।36.252।।

साधक को प्रथम के चार वर्षों में विगय का त्याग करना चाहिए और दूसरे चार वर्षों में विविध प्रकार का तप करना चाहिए।

आयंबिल के पारणे में दो वर्ष तक एकान्तर तप करना चाहिए। इसके पश्चात् छः मास तक अति विकट तप नहीं करना चाहिए। भिन्न—भिन्न तप की अवधि और आयंबिल से पारणा करने की विधि बताई गई है।

कन्दप्पमाभिओगं किब्बिसियं मोहमासुरत्तं च।
एयाओ दुग्गईओ मरणम्मि विराहिया होन्ति।। 36.257।।

कन्दर्प, अभियोग, किल्विष, मोह और आसुरी भावना दुर्गति की हेतु है और मृत्यु समय में इन भावनाओं से जीव विराधक हो जाते हैं।

मिच्छादसंणरत्ता सनियाणा हु हिंसगा।
इय जे मरन्ति जीवा तेसिं पुण दुल्लहा बोही।।36.258।।

जो जीव मिथ्यादर्शन में रत, हिंसक तथा निदानयुक्त करणी करने वाले हैं वे इन भावनाओं में मर कर दुर्लभ बोधि होते हैं।

सम्मदंसणरत्ता अनियाणा सुक्कलेसमोगाढा।
इय जे मरन्ति जीवा सुलहा तेसिं भवे बोही।।36.259

जो जीव सम्यग् दर्शन में अनुरक्त, अतिशुक्ल लेश्या वाले और निदान रहित क्रिया करते हैं, वे मरकर परलोक में सुलभ बोधि होते हैं।

समाधिमरण में बाधक और साधक तत्त्व ३६.२५६ से ३६.२६२ तक वर्णित हैं। मृत्यु के समय साधक के लिए समाधिमरण में छह बातें आवश्यक हैं— १. सम्यग्दर्शन में अनुराग २. अनिदानता ३. शुक्ल लेश्या में लीनता ४. जिनवचन में अनुरक्ति ५. जिनवचनों की भावपूर्वक जीवन में क्रियान्विति ६. आलोचना द्वारा आत्म-शुद्धि।

कान्दर्पी आदि अप्रशस्त भावनाओं का वर्णन ३६.२६३ से ३६ २६७ में किया गया है। कन्दर्प के पांच लक्षण बताए गए हैं— १. अट्टहास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वक हंसना २. गुरु आदि के साथ वक्रोक्ति या व्यंग्यपूर्वक खुलमखुल्ला बोलना या मुँह फट होना ३. काम कथा करना ४. काम का उपदेश देना और ५. काम की प्रशंसा करना। कान्दर्पी भावना, अभियोगी भावना, किल्विषिकी भावना, आसुरी भावना, सम्मोहा भावना इन पांच भावनाओं का आचरण नहीं करना चाहिए।

इय पाउकरे बुद्धे नायए परिनिव्वुए।
छत्तीसं उत्तरज्झाए भवसिद्धीयसंमए।।36.268।।

भवसिद्धिक जीवों के लिए उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययनों को प्रकट करके भगवान महावीर प्रभु निर्वाण को प्राप्त हुए।

उपसंहार

उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययनों को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि इसकी भाषा और कथन शैली विलक्षण और विशिष्ट है। इसके कुछ अध्ययन प्रश्नोत्तर शैली में, कुछ कथानक के रूप में तो कुछ उपदेशात्मक हैं। इन सभी अध्ययनों में वीतरागवाणी का निर्मल प्रवाह प्रवाहित है। इसकी भाषा शैली में काव्यात्मकता और लालित्य है। स्थान–स्थान पर उपमा अलंकार एवं दृष्टान्तों की भरमार है, जिससे कथन शैली में सरलता व रोचकता के साथ–साथ चमत्कारिता भी पैदा हुई है।

चारों अनुयोगों का सुन्दर समन्वय उत्तराध्ययन में प्राप्त होता है। वैसे इसे धर्मकथानुयोग में परिगणित किया गया है, क्योंकि इसके छत्तीस में से चौदह अध्ययन धर्मकथात्मक हैं। उत्तराध्ययन में जीव, अजीव, कर्मवाद, षड्द्रव्य, नवतत्त्व, पार्श्वनाथ और महावीर की परम्परा प्रभृति सभी विषयों का समुचित रूप से प्रतिपादन हुआ है।

उत्तराध्ययन पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, संस्कृत भाषाओं में अनेक टीकाएँ और उसके पश्चात् विपुल मात्रा में हिन्दी अनुवाद और विवेचन लिखे गए हैं, जो इस आगम की लोकप्रियता का ज्वलन्त उदाहरण है। भवसिद्धिक और परिमित संसारी जीव इसका नित्य स्वाध्याय कर अपने जीवन को आध्यात्मिक आलोक से आलोकित कर सकेंगे, अतः प्रतिदिन इस सूत्र का अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। प्रत्येक धर्मप्रेमी बन्धु को प्रतिदिन इस सूत्र का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। यह संभव नहीं हो तो कम से कम एक अध्ययन का स्वाध्याय सामायिक के साथ करना आवश्यक है। ऐसा मेरा नम्र निवेदन है।

–पूर्व न्यायाधीश, राजस्थान उच्च न्यायालय,
पूर्व अध्यक्ष, राज्य आयोग उपभोक्ता संरक्षण, राजस्थान
संरक्षक–अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
"चन्दन" बी–2 रोड, पावटा, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org